



द बगि पक्चर: 9वीं अनुसूची और SC/ST एक्ट

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

हाल ही में पहले अप्रैल में और उसके बाद मई में दायर पुनर्विचार याचिकाओं के जवाब में सुप्रीम कोर्ट ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम [Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act] 1989 से जुड़े अपने 20 मार्च के फैसले पर रोक लगाने या उसमें बदलाव करने से साफ इनकार कर दिया। शीर्ष अदालत ने कहा कि उसने इस एक्ट के प्रावधानों को छुआ भी नहीं है, केवल तुरंत गरिफ्तार करने की पुलिस की शक्तियों पर लगाम लगाई है।

इस फैसले को नष्प्रभावी करने के लिये सरकार एक अध्यादेश लाने पर विचार कर रही है तथा संसद के आगामी मानसून सत्र में एक संशोधन विधेयक लाकर उसे संविधान की 9वीं अनुसूची में डालने की तैयारी भी की जा रही है, ताकि उसे अदालत में चुनौती न दी जा सके। 9वीं अनुसूची में डाले गए कानूनों को अनुच्छेद 31B के तहत संरक्षण मिला जाता है तथा उन्हें अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती।

मुद्दा क्या था?

पुणे के राजकीय फार्मेसी कॉलेज में कार्यरत अधिकारी डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन की याचिका पर 20 मार्च को सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस आदर्श कुमार गोयल और जस्टिस उदय उमेश ललित की पीठ ने एससी/एसटी एक्ट के बड़े पैमाने पर हो रहे दुरुपयोग की बात को स्वीकारते हुए यह फैसला सुनाया था।

क्या कहा सुप्रीम कोर्ट ने?

- गरिफ्तार करने की शक्ति आपराधिक दंड संहिता (सीआरपीसी) से आती है, एससी/एसटी कानून से नहीं।
- सुप्रीम कोर्ट ने केवल इस प्रक्रियात्मक कानून की व्याख्या की है, एससी/एसटी एक्ट की नहीं।
- सुप्रीम कोर्ट के दो जजों की बेंच ने कहा कि यह इस एक्ट के खिलाफ नहीं है, लेकिन नरिदोषों को सजा नहीं मिलनी चाहिये।
- नरिदोष व्यक्तियों को इस कानून के प्रावधानों से आतंकित नहीं किया जा सकता और किसी भी व्यक्त को उसके जीने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।
- साथ ही कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि यह इस कानून या इस पर अमल के वरिद्ध नहीं है।

उल्लेखनीय है कि एससी-एसटी एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के 20 मार्च को दिये गए फैसले के संदर्भ में केंद्र सरकार ने पुनर्विचार याचिका दाखल की है। केंद्र सरकार ने अपनी पुनर्विचार याचिका में कहा कि नरिणय में इस कानून के प्रावधानों को शथिल करने के दूरगामी परिणाम होंगे। इससे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा तथा यह फैसला एससी-एसटी एक्ट, 1989 में परलक्षित संसद की विधायी नीतिके भी विपरीत है।

क्या है SC/ST (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम?

- अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अत्याचारों की रोकथाम के लिये लाया गया था। मुख्य अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का यह संशोधित प्रारूप है।

इस फैसले में एससी/एसटी एक्ट, 1989 के तहत किसी भी तरह के अपराध के मामले में नमिनलखित नए दशा-नरिदेश जारी किये गए:

न्यायालय द्वारा जारी किये गए नए दशा-नरिदेश

- ऐसे मामलों में किसी भी नरिदोष को कानूनी प्रताड़ना से बचाने के लिये कोई भी शकियत मलिन पर तत्काल एफआईआर दर्ज नहीं की जाएगी।
- सबसे पहले शकियत की जाँच डीएसपी स्तर के पुलिस अफसर द्वारा की जाएगी।
- यह जाँच पूर्ण रूप से समयबद्ध होनी चाहिये और किसी भी स्थिति में 7 दिन से अधिक समय तक न चले।
- इन नयिमों का पालन न करने की स्थिति में पुलिस पर अनुशासनात्मक एवं न्यायालय की अवमानना करने के संदर्भ में कार्रवाई की जाएगी।
- अभयिकृत की तत्काल गरिफ्तारी नहीं की जाएगी।
- सरकारी कर्मचारियों को नयिकृत करने वाले उच्चधिकारी की लखित स्वीकृतिके बाद ही गरिफ्तारी हो सकती है।
- अन्य लोगों को ज़िले के एसएसपी की लखित मंजूरी के बाद ही गरिफ्तार किया जा सकेगा।

- गरिफ्तारी के बाद अभियुक्त की पेशी के समय मजस्ट्रेट द्वारा उक्त कारणों पर वचिार करने के बाद यह तय कथिा जाएगा कथिा अभियुक्त को और अधिक समय के लथिे हरिसत रखा जाना चाहथिे अथवा नही ।
- इस मामले में सरकारी कर्मचारी अग्रमि जमानत के लथिे भी आवेदन कर सकते हैं ।
- वदिति हो कथिे इस अधनियिम की धारा-18 के तहत अभियुक्त को अग्रमि जमानत दथिे जाने पर भी रोक है ।

इस मामले की सुनवाई के दौरान कोर्ट ने कहा कथिे गरिफ्तारी से पहले शकियत की जाँच करने का आदेश अनुच्छेद 21 में वयक्तिके जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर आधारित होता है । संसद भी अनुच्छेद 21 के जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार व नषिपक्ष प्रकरथिा को नज़रअंदाज़ करने वाला कानून नही बना सकती । यह कैसा सभ्य समाज है, जहाँ कथिी के एकतरफा बयान पर लोगों पर कभी भी गरिफ्तारी की तलवार लटकती रहती है ।

कोर्ट ने इन्हें माना अपने फ़ैसले का आधार

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़े: नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के संबंध में वचिार करने पर पता चलता है कथिे अनुसूचति जात/अनुसूचति जनजात अधनियिम में दर्ज ज़्यादातर मामले झूठे पाए गए ।

सामाजिक न्याय वभिाग की वार्षिक रिपोर्ट

- न्यायालय ने अपने फ़ैसले में ऐसे कुछ मामलों का उल्लेख कथिा, जसिके अनुसार 2016 की पुलसि जाँच में अनुसूचति जात को प्रताड़ित कथिे जाने के 5347 झूठे मामले सामने आए, जबकथिे अनुसूचति जनजात के कुल 912 मामले झूठे पाए गए ।
- 2015 में एससी/एसटी कानून के तहत न्यायालय द्वारा कुल 15638 मुकदमों का नषिटारा कथिा गया । इसमें से 11024 मामलों में या तो अभियुक्तों को बरी कर दथिा गया या फरि वे आरोप मुक्त साबत हूए, जबकथिे 495 मुकदमों को वापस ले लथिा गया ।
- केवल 4119 मामलों में ही अभियुक्तों को सज़ा सुनाई गई । ये सभी आँकड़े 2016-17 की सामाजिक न्याय वभिाग की वार्षिक रिपोर्ट में पेश कथिे गए हैं ।

अध्यादेश और उसके बाद संवधान संशोधन लाया जा सकता है

एससी/एसटी कानून में तत्काल एफआईआर और गरिफ्तारी पर रोक लगाने वाले फ़ैसले के खलिाफ केंद्र सरकार की पुनर्वचिार याचकिया पर सुप्रीम कोर्ट अब जुलाई में आगे सुनवाई करेगा । फलिहाल कोर्ट ने अपने 20 मार्च के आदेश को जस-का-तस रखा है । इसके मद्देनज़र केंद्र सरकार अब एससी/एसटी एक्ट के तहत गरिफ्तारी पर सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले को बदलने के लथिे एक अध्यादेश लाने जा रही है ।

इसके बाद संसद के मानसून सत्र में एक संशोधन वधियक लाने की भी तैयारी की जा रही है, जसिमें यह वयवस्था की जाएगी कथिे एससी/एसटी एक्ट के प्रावधानों को न्यायालय में चुनौती न दी जा सके । इसके लथिे संशोधन वधियक के ज़रथिे इसे संवधान की 9वीं अनुसूची के दायरे में लाया जाएगा ।

अनुच्छेद 31बी के तहत संरक्षण दथिा जाएगा

जसि संशोधन पर वचिार कथिा जा रहा है, उसके अंतरगत इस कानून को संवधान के अनुच्छेद 31बी के तहत संरक्षण प्राप्त होगा । इस अनुच्छेद में यह वयवस्था है कथिे 9वीं अनुसूची में दर्ज कथिी भी कानून को 'इस आधार पर खारजि नही कथिा जा सकता है कथिे वह कथिी अदालत या न्यायाधकिरण के कथिी जजमेंट, डकिरी या ऑर्डर से मेल नही खाता या इनके ज़रथिे दथिे गए अधिकारों को छिनता है ।

कथिा है 9वीं अनुसूची?

- 1951 में केंद्र सरकार ने संवधान में संशोधन करके 9वीं अनुसूची का प्रावधान कथिा था ताकथिे उसके द्वारा कथिे जाने वाले भूमि सुधारों को अदालत में चुनौती न दी जा सके ।
- उस समय सरकार द्वारा शुरू कथिे गए भूमि सुधारों को मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बहिर की अदालतों में चुनौती दी गई थी, जसिमें से बहिर में इस कानून को अदालत ने अवैध ठहराया था ।
- इस वषिम स्थिति से बचने और सुधारों को जारी रखने के लथिे सरकार ने संवधान में यह अनुसूची प्रथम संवधान संशोधन अधनियिम, 1951 के द्वारा जोड़ी थी ।
- इसके अंतरगत राज्य द्वारा संपत्तिके अधग्रहण की वधियिों का उल्लेख कथिा गया है ।

पहले इस अनुसूची में शामिल कानूनों की न्यायिक समीक्षा नही की जा सकती थी, लेकिन 11 जनवरी, 2007 को सुप्रीम कोर्ट की 9-सदस्यीय संवधान पीठ के एक नरिणय द्वारा यह स्थापत कथिा गया कथिे 9वीं अनुसूची में शामिल कथिी भी कानून को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कथिे वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है ।

(टीम ड़्ट इनपुट)

समीक्षा के दायरे में हैं 9वीं अनुसूची में रखे गए कानून

11 जनवरी, 2007 को तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वाई.के. सभरवाल की अध्यक्षता वाली अशोक भान, अरजिति पसायत, बी.पी. सहिे, एस.एच. कपाड़थिा, सी.के. ठककर, पी.के. बालासुब्रमण्यम, अलतमस कबीर तथा न्यायमूर्त डी.के. जैन की संवधान पीठ ने सर्वसम्मति से फ़ैसला दथिा कथिे संवधान के भाग-3 में प्रदत्त मौलिक अधिकार संवधान के मूल ढाँचे का अहम हसिा है । इनका कथिी भी तरीके से उल्लंघन कथिे जाने पर न्यायालय इसकी समीक्षा कर सकता है ।

क्या कहा था संवधान पीठ ने?

- फ़ैसले में कहा गया कि 24 अप्रैल, 1973 को सुप्रीम कोर्ट के केशवानंद भारती मामले में आए फ़ैसले के बाद संवधान की 9वीं अनुसूची में शामिल किये गए किसी भी कानून की न्यायिक समीक्षा हो सकती है।
- इस संवधान पीठ ने व्यवस्था दी कि किसी भी कानून को बनाने और इसकी वैधानिकता तय करने की शक्ति किसी एक संस्था पर नहीं छोड़ी जा सकती।
- संसद द्वारा बनाए गए कानूनों की व्याख्या न्यायापालिका को करनी है और उनकी वैधानिकता की जाँच संसद के बजाय न्यायालय ही करेगा।
- इन कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बाहर रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती और संवधान के भाग-3 में प्रदत्त मौलिक अधिकार और भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्व संवधान के मूल ढाँचे का अहम हिस्सा हैं। इनके उल्लंघन अथवा अतिक्रमण को सुप्रीम कोर्ट असंवैधानिक ठहरा सकता है।
- वदिति हो कि वर्तमान में 9वीं अनुसूची में लगभग 284 कानून हैं जिनकी न्यायिक समीक्षा सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त फ़ैसले से पहले संभव नहीं थी।

इस फ़ैसले से यह तो स्पष्ट हो गया था कि सुप्रीम कोर्ट 9वीं अनुसूची के राजनीतिक इस्तेमाल को रोकना चाहता है। देश में कई ऐसे कानून बनाए गए हैं जो संवधान के प्रावधानों या सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के विपरीत जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, संवधान के तहत अधिकतम 50% आरक्षण का प्रावधान है, लेकिन तमलिनाडु में एक कानून बनाकर सरकारी नौकरियों में 61% आरक्षण दिया जा रहा है। तमलिनाडु सरकार के इस कदम को अदालत में चुनौती इसलिये नहीं दी जा सकी थी क्योंकि उसे 9वीं अनुसूची में डाला गया है।

संसद नहीं संवधान सर्वोपरि

हाल के वर्षों में कार्यपालिका और न्यायापालिका के बीच संबंध बहुत मधुर नहीं रहे हैं। न्यायापालिका पर अपनी सीमा का अतिक्रमण करने का आरोप लगा रहा है, तो कई मौकों पर न्यायापालिका के शीर्षस्थ सदस्यों ने न्यायिक पीठों को नुकसान पहुँचाने वाले मुद्दों को सुलझाने में कार्यपालिका की असफलता को लेकर अपनी नरिशा भी जताई है। लेकिन इसी न्यायापालिका ने दो ऐसे ऐतिहासिक फ़ैसले अतीत में दिये हैं, जिनहोंने यह स्थापित किया कि संसद नहीं, संवधान सर्वोपरि है।

गोलकनाथ मामला

पहला फ़ैसला 1967 में गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मामले में आया, जिसमें गोलकनाथ परिवार ने पंजाब में भूमि हदबंदी कानून के तहत उनकी खेती की ज़मीन के अधिग्रहण को चुनौती दी थी। गोलकनाथ परिवार ने तर्क दिया कि उनकी ज़मीन का अधिग्रहण संवधान द्वारा दिये गए कानून के समकक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण के मौलिक अधिकारों के खिलाफ है।

इस केस में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल उठा...क्या मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है? इस मामले में 11 जजों वाली संवधान पीठ ने पूर्व में पाँच जजों वाली संवधान पीठ द्वारा एक मामले (शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ) में सुनाए गए फ़ैसले की समीक्षा की, जिसमें कहा गया था कि संसद के पास संवधान के किसी भी भाग का संशोधन करने का अधिकार है। इस केस में सुप्रीम कोर्ट ने अपने पहले के नरिणय को पलट दिया और यह कहा कि संसद को मौलिक अधिकारों का खंडों में या पूर्णता में संशोधन करने का अधिकार नहीं है। यह ठीक है कि राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को लागू कराना कार्यपालिका का कर्तव्य है, लेकिन ऐसा मौलिक अधिकारों में बदलाव करके नहीं किया जा सकता।

केशवानंद भारती मामला

भारत के न्यायिक इतिहास में केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य नाम से प्रसिद्ध इस केस का नाम मठ के पुजारी के नाम पर पड़ा था। चूँकि यह मामला भी संवधान के अनुच्छेद 368 के तहत संवधान संशोधन की शक्तियों की व्याख्या से संबंधित था, इसलिये इसकी सुनवाई 13 जजों वाली संवधान पीठ ने की थी, क्योंकि गोलकनाथ मामले की सुनवाई 11 जजों वाली पीठ पहले ही कर चुकी थी।

अप्रैल, 1973 में जब सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में अपना फ़ैसला सुनाया तब सुनवाई कर रही पीठ स्पष्ट रूप से दो हिस्सों में बंटी हुई नज़र आई। 7 जज फ़ैसले के पक्ष में थे और 6 विपक्ष में। कुछ ऐसा ही गोलकनाथ मामले में देखने को मिला था, जिसमें 6-5 के बहुमत से फ़ैसला हुआ था।

केशवानंद भारती केस में सुप्रीम कोर्ट ने गोलकनाथ मामले में दिये गए फ़ैसले को पलटते हुए कहा कि संसद के पास संवधान को संशोधित करने का अधिकार है, बशर्ते संवधान के मूलभूत ढांचे (Basic Structure) से छेड़छाड़ न की गई हो। कोर्ट ने संदेह की सभी संभावनाओं को नकारते हुए कहा कि संवधान का 'मूलभूत ढांचा' एक पवित्र चीज़ है और इससे छेड़छाड़ करने की अनुमति किसी को भी नहीं दी जा सकती।

(टीम दृष्टि इनपुट)

नधिकार: लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिये गए हैं और कानून के समकक्ष सभी को समान माना गया है। ऐसे में किसी भी नागरिक के अधिकारों का हनन अनुचित है फिर चाहे वह सवर्ण हो या दलित। न्यायालय द्वारा दिया गया नरिणय भी इसी तर्क की पुष्टि करता है। यह शासनतंत्र की ज़िम्मेदारी है कि वह पछिड़े समुदायों और दलितों के संरक्षण हेतु बनाए गए कानूनों का ईमानदारीपूर्वक और भेदभाव रहित दृष्टिकोण अपनाकर अनुपालन सुनिश्चित करे, जिससे इन वर्गों के भीतर उत्पन्न असुरक्षा और उत्पीड़न का डर समाप्त हो सके एवं इनका शासनतंत्र और न्याय प्रणाली में विश्वास बना रहे। साथ ही यह देखना भी सरकार का दायित्व है कि इन कानूनों का दुरुपयोग किसी नरिपराध को परेशान करने में न किया जाए और ये आपसी दुश्मनी निकालने का एक 'टूल' बनकर न रह जाएँ।

